प्रेम कहानियां

दो कहानियां

रवीन्द्र साहित्य

एक रात

समाप्ति

इस पुस्तक की विश्व की अनेक भाषाओं में करोड़ों प्रतियां बिक चुकी हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर

रवीन्द्र नाथ ठाकुर (1861-1941) के बहुमुखी साहित्य को विलक्षण और सफल साधना कहा जा सकता है। वह केवल कुशल कथाकार ही नहीं थे बल्कि उन्होंने साहित्य की बहुत-सी विधाओं का संस्कार किया और उन्हें भारतीय संदर्भ और पहचान देकर विश्व-साहित्य के समकक्ष ला खड़ा किया।

टैगोर ने लगभग नब्बे कहानियों की रचना की; इनकी अधिकतम कहानियां अपनी औपचारिक समाप्ति के बाद भी हमारे मन में एक अजीब-सा कौतूहल और जिज्ञासा का भाव जगाये रखती हैं और इस बात का बार-बार अहसास कराती हैं कि कहानी भले ही खत्म हो गई उसका वक्तव्य या अनुरोध अब भी उसी तीव्रता के साथ मौजूद है... इतने वर्षों के बाद भी।

1913 में उन्हें उनके काव्य-संग्रह गीतांजलि के लिए साहित्य के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया जिसका अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

~

'रवीन्द्र नाथ का साहित्य जीवन का साहित्य और भारत की आत्मा का साहित्य है। श्री धन्य कुमार जैन के अनुवाद को कोई निष्पक्ष आदमी अप्रामाणिक और हलका नहीं कह सकता।'

— **'ज्ञानोदय'**

'उन्होंने बंग्ला में लिखा परन्तु उनके मानस की व्यापकता को भारत के किसी भाग तक परिसीमित नहीं किया जा सकता। वह तत्त्वत: भारतीय थे और इसके साथ ही सम्पूर्ण मानवता को घेरे हुए थे। वह एक साथ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय थे।'

— **जवाहरलाल नेहरू**

अनुवादक धन्यकुमार जैन : एक परिचय

'श्री धन्यकुमार जैन जैसे सिद्धहस्त व्यक्ति द्वारा किये-हुए अनुवाद की भाषा के संबन्ध में कुछ भी कहना व्यर्थ है। मूल बंग्ला-सा ही रस हिन्दी में उपलब्ध है।'

— 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', नयी दिल्ली

रवीन्द्रनाथ की विभिन्न पुस्तकों का कई महानुभावों ने समय-समय पर अनुवाद किया है लेकिन उनकी (कवि की) स्वप्निल भावनाओं के अनुरूप हिन्दी केवल श्री धन्यकुमार जैन ही प्रस्तुत कर सके हैं। श्री जैन ने रवीन्द्र को हिन्दी का ही बना डाला। 'नया जीवन' की ओर से हम इस साधक के ललाट पर अभिनन्दन का तिलक लगाते हैं।'

— 'नया जीवन', सहारनपुर

'श्री जैन का प्रयास निस्सन्देह बहुत ही सराहनीय है। रवि बाबू के साहित्य का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत कर आपने हिन्दी-जगत् की बड़ी सेवा की है। हिन्दी-जगत् आपकी इस महत्त्वपूर्ण सेवा को कभी भूल नहीं सकता। ऐसा करके आपने हिन्दी-साहित्य के भण्डार को भरा है और उसके गौरव को बढ़ाया है। अनुवाद बड़ा सुन्दर, चुस्त और बोधगम्य हुआ है। इन अनुवादों के लिए हिन्दी-जगत् सदैव आपका ऋणी रहेगा।'

— 'नवशक्ति', पटना

'जहां तक कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ग्रन्थों के अनुवाद का प्रश्न है, श्री धन्यकुमार जैन का नम्बर सबसे ऊपर आता है। उन्होंने तो अपने जीवन का यह लक्ष्य ही बना लिया है कि वह गुरुदेव की रचनाओं को हिन्दी-जनता के सम्मुख लायेंगे। रवीन्द्र-साहित्य के लिए उन्होंने अनुपम कार्य किया है।'

— श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

रवीन्द्र बाबू के उत्कृष्ट विचारों और बेहतर अभिव्यक्ति का एक दूसरी भाषा में अनुवाद करना वास्तव में बहुत कठिन चुनौती है और केवल वही यह उद्यम कर सकते हैं जिन्हें बंग्ला और विशेष रूप से रवीन्द्र साहित्य का पर्याप्त ज्ञान हो। सौभाग्य से धन्य कुमार जैन एक ऐसे विद्वान् है जो बंग्ला और हिन्दी दोनों में पूरी तरह सक्षम हैं।

— अमृत बाज़ार पत्रिका

प्रेम कहानियां

एक रात
समाप्ति

दो कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर

अनुक्रम

एक रात

सुरबाला के संग मैं एक साथ पाठशाला गया हूं और आंख-मिचौनी खेल में भी उसका साथी रहा हूं। मैं अकसर उसके घर जाया करता था। सुरबाला की मां मुझे बहुत प्यार करती थीं। किसी-किसी दिन वह हम दोनों को एक साथ खड़ा करके निरख-निरखकर देखतीं और आपस की बातचीत में कहतीं, 'देखा, दोनों की जोड़ी कैसी अच्छी लगती है!'

तब मैं छोटा ज़रूर था पर उनकी इस बात के मानी समझने में मैंने कोई गलती की हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। कारण बचपन ही से मेरे मन में यह धारणा जमकर बैठ गई थी कि सुरबाला पर औरों की बनिस्बत मेरा कुछ विशेष अधिकार है। उस विशेषाधिकार के मद में आकर मैंने उस पर रोब जमाया हो और अन्याय किया हो तो आश्चर्य नहीं। किन्तु सुरबाला की तरफ से इतना तो मुझे मानना ही पड़ेगा कि उसने काफी सहनशील बनकर मेरी सब तरह की आज्ञाओं का यथासम्भव पालन किया है और न करने पर मैंने जो सज़ा दी है उसे मंज़ूर भी किया है। मुहल्ले में उसके रूप की सब तारीफ किया करते थे किन्तु मुझ जैसे आवारा और उद्दंड लड़के की निगाह में उस सुन्दरता की कोई खास कीमत नहीं थी। मैं समझता था कि सुरबाला सिर्फ मेरा प्रभुत्व मानने के लिए ही अपने बाप के घर पैदा हुई है और लिहाज़ा मेरे लिए वह खास तौर से उपेक्षा की चीज़ है।

मेरे पिता गांव के ज़मींदार चौधरियों के यहां नायब थे। उनकी इच्छा थी कि लिखाई में मेरा हाथ सध जाने पर मुझे वह ज़मींदारी सरिश्ते का काम सिखाकर कहीं पर गुमाश्ते के काम पर लगा देंगे। पर मैं उनकी इस बात से मन-ही-मन नाराज़ था। जैसे हमारे मुहल्ले का नीलरतन कलकत्ता भाग कर वहां पढ़-लिखकर कलेक्टर साहब के नीचे नाजिर बन गया है, लगभग वैसे ही मेरे जीवन का लक्ष्य बहुत ऊंचा था। अगर कलेक्टर का नाजिर न हो सका तो कम-से-कम दूसरी किसी अदालत का हेड-क्लर्क तो बनूंगा ही यह मैंने मन-ही-मन तय कर रखा था।

मैं बचपन से ही देखता आया हूं कि मेरे पिता उक्त अदालत-जीवियों का बहुत-ज्यादा सम्मान करते थे। नाना उपलक्षों में मछली, साग-तरकारी, रुपये-पैसे आदि से उनकी पूजार्चना की जाती थी वह भी मुझसे छिपा नहीं था। इसलिए अदालत के छोटे-से-छोटे कर्मचारी, यहां तक कि सिपाही-पियादों तक को अपने मन में मैंने खूब सम्मान का आसन दे रखा था। असल में ये हमारे देश के पूज्य देवता हैं, 'तेंतीस-कोटि' के छोटे-मोटे नये-नये संस्करण। ज़मीन-जायदाद सम्बंधी सिद्धि-लाभ के लिए तो स्वयं सिद्धिदाता गणेश से भी इन पर लोगों का आन्तरिक भरोसा बहुत ज्यादा है। इसीलिए पहले गणेशजी का जो कुछ हक था आजकल वह हक इन्हीं को मिला करता है।

मैं भी नीलरतन के दृष्टान्त से उत्साहित होकर एक दिन मौका पाकर कलकत्ता भाग आया। पहले गांव के एक जान-पहचान वाले के यहां ठहरा। उसके बाद धीरे-धीरे पिता से भी पढ़ाई के लिए कुछ-कुछ मदद मिलने लगी और पढ़ाई नियम से होने लगी।

इसके अलावा मैं सभा-समितियों में भी शामिल हुआ करता था। इस विषय में मैं निस्सन्देह हो गया था कि देश के लिए सहसा प्राण विसर्जन देने की बड़ी सख्त ज़रूरत है। किन्तु यह दुःसाध्य कार्य किस तरह हो सकता है मुझे नहीं मालूम था और न कोई दृष्टान्त ही दिखता था।

मगर फिर भी उत्साह में कोई कमी नहीं थी। हम लोग गंवई-गांव के लड़के थे। कलकत्ता के लड़कों की तरह हम सब बातों को हंसी में उड़ाना नहीं जानते थे और इसीलिए शायद हमारी देश-भक्ति अत्यन्त दृढ़ थी। हमारी सभा के संचालकगण व्याख्यान दिया करते थे और हम लोग चन्दे का खाता लेकर बिना खाये-पीये यों ही धोरी-दुपहरी में घर-घर भीख मांगते फिरते थे। सड़क के किनारे खड़े होकर विज्ञापन बांटा करते, सभा की जगह में जाकर बेंच चौकी वगैरह लगाते और सभापति के नाम पर अगर कोई कुछ बात कह देता तो उससे कमर कस के लड़ने को आमादा हो जाते।

शहर के लड़के हमारे इन लक्षणों को देखकर हम लोगों को 'गांव के गंवार' कहने लगे थे।

कलकत्ता आया था नाजिर या सरिश्तेदार बनने पर माज़िनी या गैरिबाल्डी बनने की तैयारियां करने लगा।

इतने में मेरे पिता और सुरबाला के पिता दोनों ही एकमत होकर सुरबाला के साथ मेरे ब्याह की तैयारियां करने लगे।

मैं पन्द्रह वर्ष की उमर में कलकत्ता भाग आया था और तब सुरबाला की उम्र कुल आठ साल की थी। अब मैं अठारह साल का हूं। पिता का मत है कि मेरी ब्याह की उमर क्रमशः बीतती जा रही है पर इधर मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'मैं आजीवन ब्याह नहीं करूंगा और स्वदेश के लिए मर मिटूंगा।' पिता से मैंने कह दिया कि 'पढ़ाई खत्म किये बगैर मैं ब्याह नहीं करूंगा।'

दो-ही-चार महीने में मुझे खबर मिली कि वकील रामलोचन बाबू के साथ सुरबाला का ब्याह हो गया। पतित भारत के लिए मैं तब चन्दा-वसूली के काम में मशगूल था लिहाज़ा यह खबर मुझे अत्यन्त तुच्छ जान पड़ी।

~

मैं एण्ट्रैन्स पास कर फर्स्ट आर्ट्स की परीक्षा देने वाला था। इतने में पिता की मृत्यु हो गई। घर में सिर्फ मैं ही अकेला न था, माता और दो बहनें भी थीं। इसलिए काम-काज की टोह में घूमना पड़ा। बहुत कोशिश करने के बाद मुझे नोआखाली-विभाग के एक छोटे-से कस्बे में एक स्कूल की सेकेण्ड-मास्टरी मिली।

सोचा कि अपने योग्य काम मिल गया, अच्छा ही हुआ। उपदेश और उत्साह दे-देकर हर एक विद्यार्थी को भावी भारत का सेनापति बना दूंगा।

काम शुरू कर दिया। देखा कि भावी भारत की अपेक्षा वहां आसन्न परीक्षा की हड़बड़ी ही बहुत ज्यादा है। छात्रों को 'ग्रामर' और 'एलज़बरा' के अलावा बाहर की और बातें समझाने से हेड-मास्टर साहब नाराज़ होते हैं। और तब दो ही महीने के अन्दर मेरा उत्साह ठण्डा पड़ गया।

हम जैसे प्रतिभाहीन लोग घर बैठे अनेक तरह की कल्पनाएं किया करते हैं किन्तु अन्त में, कार्यक्षेत्र में उतरने के बाद, उनके कंधे पर जब हल रखा जाता है और पीछे से पूंछ मरोड़ी जाती है तब वह सहिष्णुता के साथ सिर झुकाये हुए दिन-भर खेत जोतने का काम करते हैं और उसके एवज़ में शाम को जो भर-पेट भूसा मिल जाता है उसी में वह सन्तुष्ट रहते हैं। फिर उनमें उछल-कूद और उत्साह कुछ भी नहीं रह जाता।

उन दिनों आग लगने की आशंका थी इसलिए एक मास्टर को स्कूल में ही रहना पड़ता था। मैं

अकेला आदमी था, लिहाज़ा मेरे ही ऊपर यह भार आ पड़ा। स्कूल से सटी हुई एक छोटी-सी झोंपड़ी में मैं रहने लगा।

स्कूल कसबे से बाहर कुछ दूरी पर एक बड़े तालाब के किनारे था। चारों तरफ सुपारी, नारियल और मदार के पेड़ थे और स्कूल से बिलकुल सटे हुए दो बड़े-बड़े नीम के पेड़ थे जिनकी छाया से स्कूल के मास्टर और छात्र काफी फायदा उठाया करते थे।

~

एक बात का उल्लेख करना भूल गया और अब तक उसे मैं उल्लेख-योग्य समझता भी न था। यहां के सरकारी वकील रामलोचन राय का मकान हमारे स्कूल के नज़दीक ही था। और मुझे यह मालूम था कि उनके साथ उनकी स्त्री, मेरी बाल्य-सखी, सुरबाला भी रहती है।

रामलोचन बाबू के साथ मेरी जान-पहचान हो गई। सुरबाला के साथ मेरी बचपन की जान-पहचान थी, यह बात रामलोचन बाबू को मालूम थी या नहीं, मैं नहीं कह सकता। मैंने भी उनसे इस नये परिचय में इस सम्बंध में कोई बात कहना ठीक नहीं समझा। साथ ही यह बात भी मेरे मन में अच्छी तरह उदय नहीं हुई कि सुरबाला का किसी दिन मेरे जीवन के साथ कोई विशेष सम्बंध था।

एक दिन छुट्टी के रोज़ मैं रामलोचन बाबू के घर पर उनसे मिलने गया। याद नहीं, किस विषय में बात चल रही थी, शायद वर्तमान भारत की दुरावस्था के सम्बंध में कुछ चर्चा कर रहे थे। वह इस विषय में विशेष चिन्तित और व्याकुल हों सो बात नहीं, किन्तु यह विषय ऐसा है कि तम्बाकू पीते-पीते इस बारे में दो-एक घण्टा अनर्गल बातें करते रहो तो वक्त मज़े में कट जाता है।

इतने में बगल के कमरे में से चूड़ियों की ज़रा मीठी खनखन, ज़रा कपड़ों की खसखस और किसी के कोमल पैरों की ज़रा कुछ आहट-सी सुनाई दी। मैं अच्छी तरह समझ गया कि खिड़की की सेंध में से कुतूहलपूर्ण नेत्रों से मेरी ओर कोई देख रही है।

उसी क्षण दो आंखों की मुझे याद उठ आई। विश्वास, सरलता और शैशव-प्रीति से छलकती हुई दो बड़ी-बड़ी आंखें थीं वह, उनमें काले-काले तारे थे और स्थिर-स्निग्ध दृष्टि थी उनकी। सहसा मेरे हृदय को मानो किसी ने कड़ी मुट्ठी में दबाकर मसोस दिया और वेदना से मेरा हृदय अध-पके फोड़े की तरह टीस मारने लगा।

~

मैं अपनी झोंपड़ी में लौट आया पर वह दर्द ज्यों-का-त्यों बना ही रहा। मैं पढ़ता-लिखता और भी काम करता पर मन का वह भाव किसी भी तरह दूर न हुआ। मन मेरा सहसा भारी बोझ-सा बनकर छाती की नसें पकड़कर ऐसा झूलने लगा कि उसके मारे मैं बेचैन हो उठा।

रात को कुछ स्थिर होकर मैं सोचने लगा कि 'ऐसा क्यों हुआ?' मन के भीतर से जवाब मिला, 'तुम्हारी वह सुरबाला कहां गई?'

मैंने उससे कहा, 'मैंने तो उसे अपनी इच्छा से छोड़ दिया। वह क्या हमेशा मेरे लिए ही बैठी रहती?'

मन के भीतर से किसी ने कहा, 'तब जिसे तुम चाहते ही पा सकते थे अब अपना सिर दे-दे मारने पर भी तुम्हें उसे एक बार आंखों से देखने तक का अधिकार नहीं मिल सकता। वह [illegible] की

झनकार सुनो, उसके जूड़े के मसाले के तेल की सुगन्ध का अन्दाज़ा लगाते रहो, मगर फिर भी बीच में एक दीवार हर हालत में खड़ी ही रहेगी।'

मैंने कहा, 'रहने दो, सुरबाला मेरी कौन है?'

जवाब मिला, 'माना कि आज वह तुम्हारी कोई भी नहीं है पर क्या वह तुम्हारी नहीं हो सकती थी?'

बात तो सच है। सुरबाला मेरी क्या नहीं हो सकती थी! सबसे बढ़कर अंतरंग हो सकती थी, सबसे ज्यादा नज़दीक और घनिष्ठ हो सकती थी, मेरे जीवन के सम्पूर्ण सुख-दु:खों की साथिन हो सकती थी। पर आज वह इतनी दूर है, इतनी पराई है कि मुझे उसे देखने तक की मनाही है, उससे बात करने में भी दोष है, उसके विषय में विचार करना भी पाप है! और एक रामलोचन नाम का अनजान आदमी अचानक न-जाने कहां से आ धमका और सिर्फ दो-चार रटे हुए मन्त्र पढ़-पढ़ाकर सुरबाला को दुनिया के और सबों के पास से क्षण-भर में झपट्टा मार के ले गया!

मानव-समाज में मैं किसी नई नीति का प्रचार करने नहीं बैठा हूं, न समाज को तोड़ने आया हूं और न बन्धन तोड़ना मैं पसन्द ही करता हूं। मैं तो सिर्फ अपने मन के असली भावों को ज़ाहिर करना चाहता हूं। अपने मन में जो भाव उठा करते हैं, वह क्या सभी विचार करने-योग्य होते हैं? पर क्या करूं, रामलोचन के घर में दीवार की ओट में जो सुरबाला खड़ी हुई थी वह रामलोचन की अपेक्षा मेरी ही अधिक थी, यह बात मेरे मन से किसी भी तरह दूर ही नहीं होना चाहती। माना कि ऐसा विचार करना बिलकुल असंगत और अत्यन्त अन्याययुक्त है पर ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं।

~

मेरा मन अब किसी काम में नहीं लगता। दोपहर को जब क्लास के लड़के गुनगुनाकर पढ़ा करते हैं बाहर जब धू-धू लू चलती रहती है, गरम हवा जब नीम की पुष्प-मंजरियों की सुगन्ध बहा लाती है तब मेरी इच्छा होती है — क्या इच्छा होती है सो मुझे नहीं मालूम, हां, इतना मैं कह सकता हूं कि भारत की उन भावी आशाओं को, देश की उन होनहार सन्तानों को, स्कूल में उनकी व्याकरण की भूलें बताकर ज़िन्दगी बसर करने की इच्छा तो कतई नहीं होती।

स्कूल की छुट्टी हो जाने पर उस सुनसान घर में अकेले मेरा मन नहीं लगता और अगर कोई भला-मानस मिलने आता तो वह भी नागवार गुज़रता। शाम के वक्त तालाब के किनारे सुपारी और नारियल के पेड़ों की अर्थहीन मर्मरध्वनि सुनते-सुनते मैं सोचने लगता कि मनुष्य — समाज एक जटिल भ्रम का जाल है। ठीक वक्त पर ठीक काम करने की किसी को भी याद नहीं रहती और उसके बाद फिर वह बे-ठीक वक्त पर बे-ठीक वासनाएं लेकर तड़पता रहता है।

मुझ सरीखा आदमी सुरबाला का पति बनकर बुढ़ापे तक खूब सुख से रह सकता था पर मैं बनने चला गैरिबाल्डी, और हुआ आखिर एक देहाती स्कूल का सेकेण्ड-मास्टर! और रामलोचन राय एक वकील है। उसके लिए खास तौर से सुरबाला का ही पति बनना कोई ज़रूरी नहीं था। ब्याह के एक क्षण पहले तक उसके लिए जैसी सुरबाला थी वैसी ही भवशंकरी, और वही रामलोचन आज बगैर कुछ सोचे-समझे सुरबाला के साथ ब्याह करके सरकारी वकील बनकर मज़े से रुपये पैदा कर रहा है! जिस दिन दूध में ज़रा धुएं की बू आती है उस दिन सुरबाला को [illegible]

लिए गहने बनने दे देता है। खूब मोटा-ताज़ा है, अचकन पहनता है और उसे किसी तरह का असन्तोष नहीं। किसी दिन वह तालाब के किनारे बैठकर आकाश के तारे गिन-गिनकर हाय-तौबा करते रात नहीं बिताता।

रामलोचन किसी मुकदमे के काम से कहीं बाहर गया था। स्कूल के मकान में जैसे मैं अकेला था वैसे ही उस दिन घर में सुरबाला भी शायद अकेली ही थी।

याद है कि दिन सोमवार था। सवेरे से बादल हो रहे थे। करीब दस बजे से टप-टप मेह बरसने लगा। बादलों की हालत देखकर हेड-मास्टर ने स्कूल की जल्दी छुट्टी कर दी। काले बादलों के टुकड़े मानो किसी एक महा आयोजन के लिए तमाम आकाश में दिन-भर इधर से उधर दौड़-धूप करते रहे। उसके दूसरे दिन शाम को मुसलाधार वर्षा और साथ-साथ आंधी भी शुरू हुई। जितनी रात बीतने लगी, वर्षा और आंधी का वेग उतना ही बढ़ता गया। पहले पुरबैया हवा चलती रही फिर क्रमशः उत्तर और उत्तर-पूर्व की हवा चलने लगी।

ऐसी रात में सोने की कोशिश करना व्यर्थ है। सहसा याद उठ आई कि आज की रात में, ऐसे आंधी-मेह में, सुरबाला घर में अकेली होगी। हमारा स्कूल वाला घर उसके घर से कहीं मज़बूत है। मैंने कितनी ही बार सोचा कि उसे स्कूल वाले घर में बुला लूं और मैं तालाब के किनारे रात बिताऊं। किन्तु किसी भी तरह मन को स्थिर न कर सका।

रात के करीब डेढ़-दो बजे होंगे। सहसा बाढ़ आने का शब्द सुनाई दिया, मानो समुद्र दौड़ा आ रहा हो। मैं घर से बाहर निकल पड़ा। सुरबाला के घर की ओर चला। रास्ते में तालाब की मेड़ थी। वहां तक पहुंचने में घुटनों तक पानी पड़ा। मैंने मेड़ के ऊपर चढ़कर देखा तो वहां एक और तरंग आ उपस्थित हुई है। हमारे तालाब की मेड़ का कुछ हिस्सा लगभग ग्यारह हाथ ऊंचा होगा।

मेड़ पर जिस समय मैं चढ़ने लगा ठीक उसी समय दूसरी ओर से एक और आदमी चढ़ा। वह आदमी कौन था यह मेरी सम्पूर्ण अन्तर्रात्मा ने, मेरे सिर से लेकर पैर तक समस्त अंगों ने जान लिया, इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं।

शेष सब-कुछ पानी में डूब चुका था। केवल हम ही दोनों जने उस पांच-छह हाथ के द्वीप में आकर खड़े हो गये थे।

तब प्रलय का समय था, आकाश में तारों का भी प्रकाश न था, संसार के सारे दीप बुझ चुके थे; एक आध बात कर लेने में भी कोई हानि नहीं थी पर एक भी बात किसी के मुंह से नहीं निकली। किसी ने किसी से कुशल तक न पूछा।

दोनों जने सिर्फ अन्धकार की तरफ देखते रहे। और पांवों के नीचे से घोर काले रंग का उन्मत्त मृत्यु-स्रोत गरज़ता हुआ प्रवाहित होता रहा।

आज सम्पूर्ण विश्व-संसार को छोड़कर सुरबाला मेरे पास आकर खड़ी हुई है। आज मेरे सिवा सुरबाला का संसार में और कोई भी नहीं है। एक दिन बचपन की वह सुरबाला न जाने किस जन्मान्तर से, किस पुराने रहस्य-अन्धकार से बहकर इस सूर्य-चन्द्रालोकित लोक-परिपूर्ण पृथ्वी पर मेरे पास आ लगी थी। और आज, कितने दिनों बाद, उसी आलोकमय लोकमय पृथ्वी को छोड़कर इस भयानक जनशून्य प्रलयान्धकार में वह अकेली मेरे ही पास आ खड़ी हुई है। जन्म-स्रोत ने जिस नव-कलिका को मेरे पास ला पटका था, अब मृत्यु-स्रोत उसी [illegible]विकसित पुष्प को मेरे ही पास ले आया है। अब सिर्फ एक और [illegible] पृथ्वी के इस

टुकड़े से, विच्छेद के इस डण्ठल से टूटकर हम दोनों एक हो जायेंगे।

वह लहर न आवे! अपने पति-पुत्र-गृह-धन-परिवार को लेकर सुरबाला चिरकाल तक सुख से रहे। मैंने इसी एक रात में महाप्रलय के तट पर खड़े-खड़े अनन्त आनन्द का आस्वाद पा लिया है।

~

रात करीब खत्म हो आई, आंधी थम गई, पानी घट गया। सुरबाला बगैर कुछ बोले-चाले चुपचाप घर की ओर चल दी; और मैं भी बिना कुछ कहे-सुने चुपके से अपने घर लौट आया।

सोचने लगा, मैं नाजिर भी न हुआ, सरिश्तेदार भी न हुआ, गैरिबाल्डी भी न हो सका, मैं एक टूटे-फूटे स्कूल का सेकेण्ड-मास्टर हूं। मेरे इस सम्पूर्ण जीवन में सिर्फ क्षण-भर के लिए एक अनन्त रात का उदय हुआ था, मेरी परमायु के सम्पूर्ण दिनों में सिर्फ यही 'एक रात' मेरे इस तुच्छ जीवन की एकमात्र चरम सार्थकता है।

बंग्ला-रचना: जेठ 1299

(मई 1892)

समाप्ति

1

अपूर्व कुमार बी.ए. पास करके छुट्टियों में कलकत्ते से अपने गांव को लौट रहा था।

रास्ते में छोटी-सी नदी पड़ती है जो वर्षा के अन्त में अकसर सूख-सी जाया करती है। अभी सावन का महीना है। नदी खूब चढ़ी हुई है, गांव की सीमा और बांस की झाड़ियों की जड़ को चूमती हुई तेज़ी से बहती चली जा रही है।

लगातार कई दिनों की घनघोर वर्षा के बाद आज ज़रा बादल छंटे हैं और आकाश में धूप दिखाई दे रही है।

नाव यथासमय घाट पर आ लगी। नदी के किनारे से पेड़ों की ओट में से अपूर्व के घर की छत दिखाई दे रही है। घर पर किसी को मालूम तक नहीं कि अपूर्व आ रहा है इसलिए घाट पर उसे लेने के लिए कोई नहीं आया। मल्लाह बैग उठाने के लिए उद्यत हुआ तो अपूर्व ने उसे मना कर दिया और खुद ही बैग हाथ में लटकाकर आनन्द की उमंग में झटपट नाव से उतर पड़ा।

किनारे पर फिसलन थी, उतरते ही वह बैग-समेत कीचड़ में गिर पड़ा। और ज्यों ही वह गिरा त्यों ही न जाने कहां से एक मीठे कण्ठ की हास्य-लहरी ने आकर बगल के पीपल पर बैठी हुई चिड़ियों को चकित कर दिया।

अपूर्व बहुत ही शर्मिन्दा हुआ और झटपट अपने को सम्भालकर चारों तरफ देखने लगा। देखा कि किनारे पर जहां महाजन की नाव से नई ईंट उतारकर इकट्ठी की गई हैं, उन्हीं पर बैठी हुई एक लड़की हंसते-हंसते बिखरी जा रही है।

अपूर्व ने पहचान लिया कि वह उन्हीं की नई पड़ोसिन की लड़की मृण्मयी है। पहले इन लोगों का घर यहां से बहुत दूर बड़ी नदी के किनारे पर था। नदी की बाढ़ के कारण दो-तीन वर्ष हुए, उन्हें गांव छोड़कर यहां आना पड़ा।

इस लड़की के बारे में बहुत निन्दा सुनने में आती है। गांव के पुरुष तो उसे स्नेह के मारे 'पगली' कहा करते हैं किन्तु गृहिणियां उसके उच्छृंखल स्वभाव से सर्वदा भयभीत, चिन्तित और शंकित रहा करती हैं। गांव के लड़कों ही के साथ उसका खेल होता है, बराबर की लड़कियों के प्रति उसकी अवज्ञा की हद नहीं। बच्चों के राज्य में यह लड़की एक तरह से शत्रु पक्ष की फौज के उपद्रव के समान जान पड़ती है।

पिता की लाड़ली है और इसीलिए इतनी निडर है। यद्यपि इस विषय में मृण्मयी की मां अपनी सखी-सहेलियों के आगे हर वक्त अपना दुखड़ा रोती मगर फिर भी यह सोचकर कि पिता लड़की को लाड़ करते हैं और जब वह घर रहते हैं तो मृण्मयी की आंखों के आंसू उनके हृदय में बहुत ही व्यथा पहुंचाते हैं, वह परदेस में रह रहे पति की याद करके लड़की को किसी भी तरह रुला नहीं सकतीं।

मृण्मयी देखने में सांवली है। छोटे-छोटे घुंघराले बाल पीठ तक बिखरे रहते हैं। चेहरे पर बिलकुल बालक का-सा भाव है, बड़ी-बड़ी काली आंखों में न तो शर्म है, न डर और न हाव-भाव का कोई लेश। शरीर लम्बा, परिपुष्ट, स्वस्थ और सबल है। उसकी उम्र ज़्यादा है या कम, यह प्रश्न किसी के मन में उठता ही नहीं। मगर उठते [illegible]

निन्दा करते कि 'अभी तक वह कुंवारी ही फिर रही है।' जब कभी गांव के विदेशी ज़मींदार की नांव आकर घाट पर लगती है तो उस दिन गांव के लोग उनकी आवभगत करने की तैयारी में घबरा-से जाते हैं; घर की स्त्रियों की मुख-रंगभूमि पर अकस्मात् नाक के नीचे तक यवनिका पड़ जाती है किन्तु मृण्मयी न जाने कहां से किसी के नंग-धड़ंग बच्चों को गोद में लिये हुए घुंघराले बाल पीठ पर बिखेरे आ खड़ी होती है। जिस देश में कोई शिकारी नहीं, कोई विपत्ति नहीं, उस देश के हरिण के बच्चे की तरह वह निर्भीक खड़ी हुई कुतूहल से टकटकी लगाये देखा करती और अन्त में अपने बालक-संगियों के पास जाकर उस नवागत प्राणी के आचार-व्यवहार के विषय में विस्तार के साथ वर्णन करती।

हमारे अपूर्व कुमार ने छुट्टी के दिनों में घर आकर इससे पहले और भी दो-चार बार इस बन्धनहीन बालिका को देखा है; फ़ुर्सत के वक्त भी और यहां तक कि काम के वक्त भी देखा है और उसके विषय में विचार किया है। पृथ्वी पर अनेक चेहरे देखने में आते हैं किन्तु कोई-कोई चेहरा ऐसा होता है कि न कुछ कहना, न सुनना, चट से मन के भीतर जाकर ऐसा पैठ जाता है कि उसे निकालना मुश्किल हो जाता है। सिर्फ सौन्दर्य के कारण ही ऐसा होता हो सो बात नहीं, वह तो कुछ और ही गुण हैं। अधिकांश चेहरों पर मनुष्य-प्रकृति पूरी तौर से अपना प्रकाश नहीं डाल पाती और जिस चेहरे पर हृदय के एक कोने में बैठा हुआ वह रहस्यमय व्यक्ति बिना बाधा के बाहर निकलकर दिखाई देता है वह चेहरा हज़ार में छिपता नहीं बल्कि पल-भर में मानस-पट पर अंकित हो जाता है। इस बालिका के चेहरे पर एक चंचल और ढीठ नारी-प्रकृति हमेशा उन्मुक्त और जंगल के दौड़ते हुए मृग की तरह दिखाई देती रहती थी। वह खेलती-फिरती थी और इसीलिए ऐसे सजीव चंचल चेहरे को एक बार देख लेने पर फिर सहज में भुलाये नहीं भूलता।

पाठकों को यह बताने की ज़रूरत नहीं कि मृण्मयी की हास्य-ध्वनि चाहे कितनी ही मीठी क्यों न हो किन्तु अभागे अपूर्व के लिए वह ज़रा कुछ तकलीफदे ही साबित हुई। मारे शर्म के उसका चेहरा सुर्ख हो उठा और हाथ का बैग चट से मल्लाह के हाथ में सौंपकर वह तेज़ी से अपने घर की तरफ चल दिया।

प्रकृति की तैयारियां भी बहुत सुन्दर थीं। नदी का किनारा, पेड़ों की छाया, चिड़ियों का मधुर-गान, प्रभात की मीठी-मीठी धूप, उस पर बीस साल की उम्र। अवश्य ही ईंटों का ढेर ऐसा कुछ खास उल्लेख-योग्य नहीं किन्तु उस पर जो मानव-कन्या बैठी थी उसने उस रूखे-सूखे कठोर आसन पर भी एक तरह का खास मनोरम सौन्दर्य भाव फैला रखा था। हाय-हाय, ऐसे मनोरम दृश्य में पहला कदम रखते ही जिसका सारा का सारा कवित्व प्रहसन में परिणत हो जाये उसके भाग्य की इससे बढ़कर निष्ठुरता और क्या हो सकती है!

2

ईंटों के ढेर के ऊपर से बहती हुई हंसी की लहर सुनते-सुनते पेड़ों की छाया के नीचे से कीचड़-से-सना दुपट्टा और बैग लिये हुए श्रीयुत अपूर्व कुमार किसी तरह अपने घर जा पहुंचे।

अचानक पुत्र के आ जाने से विधवा मां मारे खुशी के फूली न समाई। उसी वक्त खोआ-दही-दूध और मछली की खोज में दूर-नजदीक सब जगह आदमी दौड़ाये गये और पास-पड़ोस में भी एक तरह की हलचल पैदा हो गई।

[illegible] चुकने के बाद मां ने [illegible] के आगे ब्याह का प्रस्ताव छेड़ा। अपूर्व इसके लिए तैयार

था। कारण, प्रस्ताव बहुत पहले से ही पेश था, सिर्फ बेटा ज़रा-कुछ नई रोशनी के चक्कर में आकर ज़िद कर बैठा था कि 'बी.ए. पास किये बगैर मैं ब्याह हरगिज़ नहीं कर सकता' इत्यादि। अब तक जननी उस 'पास' की ही प्रतीक्षा में थीं लिहाज़ा अब किसी तरह की आपत्ति करने के मानी हैं झूठी बहानेबाज़ी।

अपूर्व ने कहा, 'पहले लड़की तो देखो फिर देखा जायेगा।'

मां ने कहा, 'लड़की देखी जा चुकी है — उसके लिए तुझे फिक्र करने की ज़रूरत नहीं।'

किन्तु अपूर्व उसके लिए खुद ही फिक्र करने को तैयार हो गया और बोला, 'लड़की बिना देखे तो मैं ब्याह नहीं कर सकता।'

मां सोचने लगी, 'ऐसी अनोखी बात तो आज तक नहीं सुनी!' किन्तु फिर भी राज़ी हो गई।

रात को अपूर्व दीया बुझाकर बिस्तर पर जा पड़ा और पड़ने के साथ ही वर्षा-निशीथ की सारी-की-सारी आवाज़ और सम्पूर्ण निस्तब्धता के उस पार से उसकी विनिद्र शय्या पर एक मधुर कण्ठ की हास्य-ध्वनि आ-आकर लगातार उसके कानों में बजने लगी। उसका मन अपने को बार-बार लगातार यह कह-कहकर पीड़ा देने लग गया कि सवेरे वह जो पैर फिसलने से गिर पड़ा था उसका किसी-न-किसी तरकीब से सुधार कर ही देना चाहिए। उस लड़की को यह मालूम ही नहीं कि 'मैं अपूर्व कुमार हूं और अचानक फिसलन पर पांव पड़ जाने से कीचड़ में गिर जाने पर भी मैं कोई उपेक्षणीय गांव का युवक नहीं।'

दूसरे दिन अपूर्व को लड़की देखने जाना था। मुहल्ले में ही लड़की वालों का घर था। उसने ज़रा-कुछ जतन के साथ ही कपड़े पहने। धोती-दुपट्टा छोड़कर रेशमी अचकन और पतलून, सर पर अमीरी ढंग की गोल पगड़ी और पांवों में बार्निशदार चमकते हुए जूते पहनकर, रेशमी कपड़े की बढ़िया छतरी हाथ में लटकाये वह सवेरे ही चल दिया।

होने वाली सुसराल में पदार्पण करते ही वहां धूम मच गई। अन्त में यथासमय कम्पित-हृदय लड़की को झाड़-पोंछकर, सजा-धजाकर, जूड़े में गोटा वगैरह लगाकर और एक महीन रंगीन साड़ी में लपेटकर उसे भावी वर के सामने लाया गया। लड़की एक कोने में लगभग घुटनों तक माथा झुकाये चुपचाप जड़वस्तु-सी बैठी रही और उसके पीछे हिम्मत बंधाये रखने के लिए खड़ी रही एक अधेड़ उम्र की दासी। लड़की का एक भाई, जो कि अभी बच्चा ही था, अपने परिवार में अनधिकार प्रवेश करने वाले इस नये आदमी की पगड़ी, घड़ी की चेन और उठती हुई मूंछों की तरफ बड़े ध्यान से टकटकी बांधे देखने लगा।

अपूर्व ने कुछ देर मूंछों पर हाथ फेरने के बाद अन्त में गम्भीरता के साथ पूछा, 'तुम क्या पढ़ती हो?'

गहनों-कपड़ों से लदी हुई लज्जा की गठरी में से उसे अपने सवाल का कोई भी जवाब नहीं मिला। दो-चार बार पूछे जाने और पुरानी दासी द्वारा पीठ पर बार-बार उत्साहप्रद थपकियां पड़ने के बाद लड़की ने बहुत ही धीमी आवाज़ में जल्दी-जल्दी एक ही सांस में कहकर छुट्टी पा ली, 'कन्या-बोधिनी — दूसरा भाग, व्याकरण-सार, भूगोल, अंक-गणित, भारतवर्ष का इतिहास।'

इतने में बाहर किसी की तेज़ चाल की 'धम-धम' आवाज़ सुनाई दी और दूसरे ही क्षण दौड़ती-हांफती और पीठ पर के बालों को हिलाती हुई मृण्मयी वहां आ धमकी। उसने अपूर्व की तरफ

आंख उठाकर देखा तक नहीं, सीधी उस होने वाली दुलहिन के छोटे भाई राखाल के पास पहुंची और उसका हाथ पकड़कर खींचना शुरू कर दिया। राखाल उस समय भावी दूल्हा-दुलहिन को देखने में मस्त था और वहां से वह किसी भी तरह टस से मस नहीं हुआ। नौकरानी अपने संयत कण्ठ की कोमलता की भरसक रक्षा करती हुई तीव्रता के साथ मृण्मयी को फटकारने लगी। अपूर्व अपनी सारी-की-सारी गम्भीरता और गौरव को इकट्ठा करके पगड़ी-शुदा माथे को ऊँचा करके बैठा रहा और पेट के पास लटकती हुई अपनी घड़ी की चेन को हिलाने लगा।

आखिरकार मृण्मयी ने जब देखा कि उसका साथी किसी भी तरह वहां से हिल नहीं रहा तब उसने उसकी पीठ पर एक ज़ोर का मुक्का जमा दिया और भावी दुलहिन के माथे का घूंघट उघाड़कर वह आंधी की तरह जिस रफ्तार से आई थी उसी रफ्तार से भाग खड़ी हुई। नौकरानी जी मसोसकर रह गई और भीतर-ही-भीतर घुमड़-घुमड़ के गर्जने लगी। राखाल अचानक बहन का घूंघट खुल जाने से एकाएक खिल-खिलाकर हंस पड़ा। इस आनन्द में अपनी पीठ पर पड़े हुए मुक्के को भी उसने बेजा नहीं समझा। कारण ऐसा देन-लेन उनमें अकसर हुआ ही करता है — कोई खास बात नहीं थी। इसके लिए एक दृष्टान्त ही काफी है। एक दिन की बात है कि राखाल ने अचानक पीछे से आकर मृण्मयी के पीठ तक बढ़े हुए बाल कैंची से कतर दिये — इस पर मृण्मयी को बहुत ज़ोर का गुस्सा आया और उसने चट से राखाल के हाथ से कैंची छीनकर अपने बाकी बचे हुए बाल भी बड़ी निर्दयता से कतर-कतरकर उसके मुंह पर दे मारे। मृण्मयी के घुंघराले बालों के गुच्छे डाली से गिरे हुए काले अंगूर के गुच्छों की तरह ज़मीन पर बिखर गये। इन दोनों में शुरू से ही इस तरह का व्यवहार था।

इसके बाद फिर वह नीरव परीक्षा-सभा ज़्यादा देर तक न टिक सकी। गठरी-सी बनी लड़की बड़ी मुश्किल से अपने को लम्बी बनाकर दासी के साथ घर के भीतर चली गई। अपूर्व परम गम्भीरता के साथ अपनी उठती हुई मूंछों पर हाथ फेरता हुआ उठ खड़ा हुआ। दरवाजे के पास जाकर देखा कि उसके बार्निशदार नये जूते वहां से गायब थे। बहुत कोशिश करने पर भी इस बात का कतई पता न चला कि जूते कौन ले गया, कहां गये।

घरवाले सभी बड़े परेशान हुए और अपराधी के नाम पर लगातार निन्दा और गालियों की वर्षा होने लगी।

बहुत ढूंढ़ने पर भी जब जूतों का कुछ पता न लगा तो अन्त में मजबूर होकर घर के मालिक की फटी-पुरानी ढीली चट्टी (खुली एड़ी की काठ की बनी चप्पल) पहनकर पतलून-चपकन पगड़ी आदि से सुसज्जित अपूर्व गांव के कीचड़-भरे रास्ते से अत्यन्त सावधानी के साथ घर की ओर चल दिया।

~

तालाब के किनारे सुनसान रास्ते पर पहुंचते ही सहसा फिर उसे वही ज़ोर की हंसी सुनाई दी। मानो पेड़-पत्तों की ओट में से कौतुकप्रिया वनदेवी अपूर्व की उन बेमेल जूतियों को देखकर एकाएक हंस पड़ी हो।

अपूर्व अत्यन्त लज्जित होकर ठिठक गया और इधर-उधर निगाह दौड़ाकर देखने लगा। इतने में सघन वन में से निकलकर किसी निर्लज्ज अपराधिनी ने उसके सामने नये जूते रख दिये और जैसे ही वह चट से भाग जाने को तैयार हुई कि अपूर्व ने जल्दी से उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे कैद कर लिया।

मृण्मयी ने यथासाध्य टेढ़ी-सीधी-तिरछी होकर, ज़ोर लगाकर, हाथ छुड़ा के भागने की बहुत कोशिश की लेकिन व्यर्थ। घुंघराले बालों से घिरे हुए उसके भरे हुए गोल-मटोल मुस्कराते हुए चंचल चेहरे पर सूरज की किरणें पेड़ की डालियों और पत्तों में से छन-छनकर पड़ने लगीं। कुतूहली पथिक जिस तरह सूर्य-किरणों से चमकती हुई निर्मल चंचल निर्झरिणी की ओर झुककर टकटकी लगाये उसकी तली को देखता रहता है ठीक उसी तरह अपूर्व ने मृण्मयी के ऊपर उठे हुए चेहरे पर झुककर, उसकी बिजली-सी चंचल आंखों के भीतर गहरी निगाह गड़ाकर देखा और फिर बहुत ही आहिस्ते से मुट्ठी ढीली करके बन्दिनी को मुक्त कर दिया। अपूर्व अगर गुस्से में आकर मृण्मयी को पकड़कर मारता तो उसे ज़रा भी आश्चर्य न होता किन्तु इस प्रकार सुनसान रास्ते में इस अद्भुत नीरव दण्ड का वह कुछ अर्थ ही न समझ सकी।

नाचती हुई प्रकृति के नूपुरों की झनकार के समान फिर वही चंचल हास्य-ध्वनि सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त होकर गूंज उठी और चिन्ता-मग्न अपूर्व बहुत धीरे-धीरे पैर रखता हुआ घर की ओर चल दिया।

3

उस दिन अपूर्व तरह-तरह के बहाने बनाकर न तो घर के भीतर गया और न मां से मिला। किसी के यहां निमंत्रण था, वहीं खा आया। अपूर्व सरीखा पढ़ा-लिखा और गम्भीर युवक एक मामूली बिना-पढ़ी-लिखी लड़की के मुकाबले अपने लुप्त गौरव का उद्धार करने और उसे अपनी आन्तरिक महत्ता का पूर्ण परिचय देने के लिए क्यों इतना उत्कण्ठित हो उठा, यह समझना कठिन है। यदि गांव की चंचल लड़की ने उसे मामूली आदमी समझ ही लिया तो क्या हो गया? उसने क्षण-भर के लिए अपूर्व को हास्यास्पद बनाकर और फिर उसके अस्तित्व को भूलकर राखाल नाम के किसी निर्बोध लड़के के साथ खेलने के लिए दिलचस्पी जाहिर की तो इसमें अपूर्व का बिगड़ ही क्या गया? इन बच्चों के सामने उसे यह साबित करने की ज़रूरत ही क्या है कि वह 'विश्वदीप' नामक मासिक पत्र में किताबों की समालोचना किया करता है और उसके बकस के अन्दर एसेन्स, जूते, रुबिनी के कैम्फर, चिट्ठी लिखने के रंगीन कागज़ और 'हारमोनियम-शिक्षा' किताब के साथ एक पूरी लिखी हुई प्रेस-कापी, निशीथ के गर्भ में भावी ऊषा की तरह, प्रकाशित होने की प्रतीक्षा कर रही है?

किन्तु मन को समझाना कठिन है, कम-से-कम इस देहाती चंचल लड़की के सामने श्री अपूर्व कुमार राय, बी.ए., पराजय स्वीकार करने को किसी भी तरह तैयार नहीं।

शाम को अपूर्व जब घर के भीतर पहुंचा तो उसकी मां ने पूछा, 'क्यों रे, लड़की देख आया? कैसी है? पसन्द है न?'

अपूर्व ने ज़रा-कुछ झेंपते हुए कहा, 'हां, देख आया मां! उनमें से एक लड़की मुझे पसन्द है।'

मां ने कुछ आश्चर्य के साथ कहा, 'तैने कितनी लड़कियां देखी थीं वहां?'

अन्त में दो-चार प्रश्नोत्तर के बाद मां को मालूम हुआ कि उनके लड़के ने पड़ोसिन शारदा की लड़की मृण्मयी को पसन्द किया है। इतना पढ़-लिखकर भी लड़के की ऐसी पसन्द!

पहले तो अपूर्व कुछ शरमाता रहा लेकिन अन्त में मां जब उसकी पसन्द का विरोध करने लगीं तो उसकी वह शर्म जाती रही। यहां तक कि ज़िद में आकर वह कह बैठा, 'मृण्मयी के

सिवा मैं और किसी से ब्याह करूंगा ही नहीं।' और ज्यों-ज्यों वह उसके सामने पहले लाई गई उस जड़-पुतली जैसी लड़की की कल्पना करने लगा त्यों-त्यों ब्याह के बारे में उसकी अरुचि बढ़ती ही गई।

दो-तीन दिन तक मां और बेटे में नाराज़गी का भाव रहा और मां ने खाना-पीना सोना तक बन्द कर दिया किन्तु अन्त में अपूर्व की ही जीत हुई। मां ने अपने मन को समझाया कि मृण्मयी अभी बच्ची ही है और उसकी मां उसे पढ़ाने में असमर्थ है, ब्याह के बाद अपने घर आ जाने पर वह उसे ठीक कर लेंगी। धीरे-धीरे उन्हें इस बात पर भी भरोसा होने लगा कि उसका चेहरा सुन्दर है। किन्तु उसी समय उसके भद्दे बालों की कल्पना करते ही उनका मन निराशा से भर गया, फिर भी उन्होंने आशा की कि ठीक से जूड़ा बांधते रहने और खूब तेल डालते रहने से यह त्रुटि भी कुछ दिनों में जाती रहेगी।

मुहल्ले के सभी लोग अपूर्व की इस पसन्द को 'अपूर्व-पसन्द' कहने लगे। पगली मृण्मयी को प्यार तो बहुत से लोग करते थे — किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि उसे वह अपने लड़के के साथ ब्याहने-योग्य समझते हों।

मृण्मयी के बाप ईशानचन्द्र मजुमदार को यथासमय खबर दे दी गई। वह किसी स्टीमर-कम्पनी की तरफ से बतौर क्लर्क के नदी के किनारे एक छोटे-से स्टेशन पर टीन-से छती हुई छोटी-सी झोंपड़ी में माल उतरवाने-लदवाने और टिकट बेचने का काम करते थे। देश से अपनी लड़की मृण्मयी के संबन्ध और ब्याह का समाचार पाकर उनकी दोनों आंखों से आंसू गिरने लगे। इस बात का अन्दाज़ा लगाना कठिन है कि उनमें कितना दु:ख और कितना आनन्द था ।

अपनी लड़की के ब्याह में जाने के लिए ईशानचन्द्र ने हेडऑफिस के साहब को छुट्टी के लिए दरखास्त दी। साहब ने उसे बहुत ही तुच्छ काम समझकर छुट्टी नामंज़ूर कर दी। तब उन्होंने घर लिख दिया कि दशहरे के मौके पर उन्हें एक हफ्ते की छुट्टी मिलेगी और तब तक के लिए ब्याह स्थगित रखा जाये।

अपूर्व की मां ने लिखा कि 'इस महीने का मुहूर्त बहुत अच्छा है, अब दिन आगे नहीं स्थगित किया जा सकता।'

दोनों जगह से प्रार्थना नामंज़ूर हो जाने पर व्यथित-हृदय पिता ने फिर कोई आपत्ति नहीं की और पहले की तरह ही वह माल वज़न करने और टिकट बेचने के काम में लग गये।

इसके बाद मृण्मयी की मां और गांव के जितने भी बड़े-बूढ़े थे सब कोई मिलकर मृण्मयी को उसके भावी कर्त्तव्य के विषय में दिन-रात उपदेश देने लगे। ऊटपटांग खेल-कूद, भाग-दौड़, जल्दी-जल्दी चलना, ज़ोर-ज़ोर से हंसना, लड़कों के साथ हिलना-मिलना, फालतू बातें करना और भूख लगते ही खाने को मांग बैठना इत्यादि विषयों पर मनाही की सलाह दे-देकर सबों ने ब्याह को उसके सामने एक भूत बनाकर खड़ा कर दिया।

उत्कण्ठित और शंकित-हृदय मृण्मयी ने समझा कि उसे ज़िन्दगी-भर के लिए कैद और उसके बाद फाँसी की सज़ा दी जा रही है।

नतीजा यह हुआ कि कमबख्त अड़ियल टट्टू की तरह गर्दन टेढ़ी करके पीछे को हटकर कह बैठी, 'मैं ब्याह नहीं करूंगी, जाओ!'

किन्तु फिर भी उसे ब्याह करना ही पड़ा।

उसके बाद शिक्षा शुरू हुई। अपूर्व की मां के घर आकर एक ही रात में मृण्मयी की अपनी सारी दुनिया कैद में घिर गई।

सास ने बहू का सुधार करना शुरू कर दिया। उन्होंने बहुत ही कठोर मुंह बनाकर बहू से कहा, 'देखो बहू, तुम अब नन्ही बच्ची नहीं रहीं — हमारे घर में ऐसी बेहयाई नहीं चलेगी।'

जिस भाव से सास ने यह बात कही मृण्मयी उसे ठीक उसी रूप में न ले सकी। उसने सोचा कि इस घर में अगर न चले तो शायद दूसरी जगह कहीं जाना पड़ेगा।

दोपहर को बहू घर में नहीं दिखाई दी। 'कहां गई, कहां गई' — ढुंढ़ेरा पड़ गया। अन्त में विश्वासघातक राखाल ने उसके गुप्त स्थान का पता बताकर उसे पकड़वा दिया। वह बड़ के नीचे श्रीराधाकान्त जी के टूटे रथ में जाकर छिप गई थी।

सास ने, मां ने और अड़ोस-पड़ोस की सब-की-सब हितैषिणियों ने उसको कितना डांटा-फटकारा और लज्जित किया, इसकी कल्पना खुद पाठक ही कर लें तो अच्छा हो।

~

रात को खूब बादल घिर आये और रिमझिम-रिमझिम मेह बरसने लगा।

अपूर्व ने धीरे-धीरे मृण्मयी के पास पलंग पर जाकर उसके कान में धीरे से कहा, 'मृण्मयी, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं?'

मृण्मयी यकायक कड़ककर बोल उठी, 'नहीं। मैं तुम्हें हर्गिज़ प्यार नहीं करूंगी।' मानो उसने अपना सारा गुस्सा और सबके कसूर का सारा दण्ड एकसाथ बिजली की तरह अपूर्व के माथे पर दे मारा।

अपूर्व ने दु:खी होकर कहा, 'क्यों, मैंने तुम्हारा क्या कसूर किया है?'

इस कसूर की सन्तोषजनक कैफियत देना मुश्किल है। अपूर्व ने मन-ही-मन कहा, 'इस विद्रोही मन को जैसे भी बने वश में करना ही होगा।'

दूसरे दिन सास ने मृण्मयी में विद्रोह-भाव के सब लक्षण देखकर उसे कोठे में बन्द कर दिया। पिंजड़े में फँसी हुई नई चिड़िया की तरह पहले तो वह बहुत देर तक कोठे के अन्दर फड़फड़ाती रही लेकिन बाद में जब कहीं भी भागने का कोई रास्ता न मिला तो निष्फल क्रोध से उसने बिछौने की चादर को दांतों से चीथ-चीथकर उसके चीत्थड़े उड़ा दिये और ज़मीन पर औंधी पड़कर मन-ही-मन पिता को याद कर-करके रोने लगी।

ठीक इसी समय धीरे से कोई उसके पास आकर बैठ गया और बड़े स्नेह से उसके धूल में लोटते हुए बालों को गालों पर से एक तरफ हटा देने की कोशिश करने लगा। मृण्मयी ने बड़े ज़ोर से अपना सिर हिलाकर उसका हाथ हटा दिया।

अपूर्व ने उसके कानों के पास अपना मुंह ले जाकर बहुत ही कोमल स्वर में कहा, 'मैंने चुपके से दरवाज़ा खोल दिया है। चलो, अपन पीछे के बगीचे में भाग जायें।'

मृण्मयी ने ज़ोर से सिर हिलाकर रोते हुए कहा, 'नहीं।'

अपूर्व ने ठोड़ी पकड़कर उसका मुंह ऊपर को उठाना चाहा और कहा, 'एक बार देखो तो सही, कौन आया है'

राखाल ज़मीन पर पड़ी हुई मृण्मयी की ओर देखता हुआ हतबुद्धि की तरह दरवाजे के पास खड़ा था। मृण्मयी ने बिना मुंह उठाये ही अपूर्व का हाथ झटक कर अलग कर दिया।

अपूर्व ने कहा, 'देखो तो सही, राखाल तुम्हारे साथ खेलने आया है। क्या तुम खेलने नहीं जाओगी?'

मृण्मयी ने गुस्से-भरे स्वर में कहा, 'नहीं।'

राखाल ने देखा कि मामला गड़बड़ है। वह किसी तरह घर से बाहर निकलकर जान बचाकर भाग गया। अपूर्व चुपचाप बैठा रहा। जब मृण्मयी रोते-रोते थक के सो गई तब वह चुपके से उठा और बाहर से दरवाजे की सांकल चढ़ाकर दबे-पांव वहां से चल दिया।

इसके दूसरे ही दिन मृण्मयी को पिता की एक चिट्ठी मिली। उसमें उन्होंने अपनी प्राणों से प्यारी बेटी मृण्मयी के ब्याह में न आ सकने के कारण विलाप करके अन्त में नव-दम्पति को आन्तरिक आशीर्वाद दिया था।

मृण्मयी ने सास के पास जाकर कहा, 'मैं बापूजी के पास जाऊंगी।'

सास ने अकस्मात् बहू की इस असम्भव प्रार्थना को सुनकर उसे डांट दिया, 'बाप का कहीं कुछ ठीक-ठिकाना भी है कि ऐसे ही बापूजी के पास जायेगी! तेरा तो दुनिया से एक न्यारा ही स्वांग है! ऐसा लाड़ मुझे नहीं अच्छा लगता।'

बहू ने कुछ जवाब नहीं दिया। अपने कमरे में जाकर उसने भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये और बिलकुल हताश आदमी जिस तरह देवता से प्रार्थना करता है उसी तरह वह कहने लगी, 'बापूजी, मुझे तुम ले जाओ यहां से। यहां मेरा कोई नहीं है। यहां मैं नहीं बचूंगी।'

बहुत रात बीत जाने पर जब उसके पति सो गये तब वह चुपके से दरवाज़ा खोलकर बाहर चल दी। यद्यपि बीच-बीच में बादल घिर-घिर जाते थे लेकिन चांदनी रात में रास्ता दिखाई देने लायक उजाला काफी था। 'बापूजी' के पास जाने के लिए किस रास्ते से जाना चाहिए, मृण्मयी को कुछ भी पता न था। उसे तो सिर्फ इतना ही पता था कि जिस रास्ते से डाक ले जाने वाले डाकिया लोग जाया करते हैं उसी रास्ते से दुनिया के किसी भी ठिकाने पर पहुंचा जा सकता है। मृण्मयी उसी डाक वाली सड़क पर चलती चली गई। जंगल में जब कि दो-एक पक्षी पंख फड़फड़ाकर अनिश्चित स्वर में बोलना चाहते थे और साथ ही समय का निस्सन्देह निर्णय न कर सकने के कारण दुविधा में चुप रह जाते थे उस समय मृण्मयी सड़क के छोर में नदी के किनारे एक बाज़ार-सरीखे स्थान पर जा पहुंची। इसके बाद वह सोच ही रही थी कि अब किस ओर जाना चाहिए, इतने में उसे परिचित 'झमझम' शब्द सुनाई दिया। थोड़ी देर में कंधे पर चिट्ठियों का थैला लटकाये हांफता हुआ डाक का 'रनर' आ पहुंचा।

मृण्मयी जल्दी से उसके पास जाकर करुण और थके हुए स्वर में बोली, 'मैं अपने बापू के पास जाऊंगी कुशीगंज, तुम मुझे साथ ले चलो न!'

उसने कहा, 'कुशीगंज कहां है, मुझे नहीं मालूम।' इतना-सा जवाब देकर वह घाट पर पहुंचा और घाट पर बंधी हुई डाक की नाव में बैठकर मल्लाह को जगाकर उसने नाव खुलवा दी। उस समय उसे किसी पर दया दिखाने या पूछताछ करने की फुर्सत नहीं थी।

देखते-देखते घाट और बाज़ार सजग हो उठे। मृण्मयी ने घाट पर जाकर एक मल्लाह से कहा, 'मुझे कुशीगंज ले जाओगे?'

मल्लाह के उत्तर देने के पहले ही बगल की नाव पर से कोई बोल उठा, 'अरे, कौन है? मीनू बेटी, तू यहां कैसे आई?'

मृण्मयी अत्यन्त व्यग्रता के साथ बोल उठी, 'बनमाली, मैं बापूजी के पास कुशीगंज जाऊंगी, तू अपनी नाव पर मुझे ले चल।'

बनमाली उसके गांव का ही मल्लाह था, वह इस उच्छृंखल-प्रकृति बालिका को अच्छी तरह पहचानता था। उसने कहा, 'बापू के पास जायेगी? बड़ी अच्छी बात है। चल, मैं तुझे पहुंचा दूं।'

मृण्मयी नाव पर जा बैठी।

मल्लाह ने नाव छोड़ दी। बादल घिर आये और मूसलाधार वर्षा होने लगी। सावन-भादों की तरह भरपूर चढ़ी हुई नदी फूल-फूलकर नाव को ज़ोरों से हिलाने लगी। मृण्मयी का सारा शरीर थकावट और नींद के मारे टूटने-सा लगा, आंखों में नींद भर आई और वह आंचल बिछाकर पड़ रही। पड़ते ही नदी के इस हिंडोले में, वह चंचल बालिका प्रकृति के स्नेह से पले हुए शान्त शिशु की तरह, बेखटके सो गई।

आंख खुली तो देखा कि वह अपनी ससुराल में खाट पर पड़ी सो रही है। उसे जगते देखकर महरी बड़बड़ाने लगी। महरी की आवाज़ सुनकर सास भी आ पहुंचीं और कड़ी-कड़ी बातें सुनाने लगीं। मृण्मयी आंखें फाड़-फाड़कर चुपचाप उनके मुंह की ओर देखती रही। अन्त में सास ने जब उसके बापू की 'शिक्षा' पर कटाक्ष करना शुरू किया तब मृण्मयी ने जल्दी से उठकर बगल की कोठरी में घुसकर भीतर से सांकल लगा ली।

अपूर्व ने हया-शरम को ताक पर रखकर मां से कहा, 'मां, बहू को दो-चार दिन के लिए एक बार मायके भेज देने में कोई हर्ज़ है?'

मां ने अपूर्व को ऐसा फटकारा कि जो 'न भूतो न भविष्यति।' दुनिया में इतनी लड़कियों के होते हुए न जाने कहां से छांट-छांट के ऐसी हाड़ जलाने वाली लड़की को घर में लाने की बेहूदगी पर अपूर्व को मां से काफी खरी-खोटी सुननी पड़ी।

5

उस दिन दिन-भर घर के बाहर आंधी-मेह और भीतर आंसुओं की वर्षा होती रही।

दूसरे दिन आधी रात को अपूर्व ने मृण्मयी को धीरे से जगाकर कहा, 'मृण्मयी, तुम अपने बापूजी के पास जाओगी?'

मृण्मयी ने चौंककर जल्दी से अपूर्व का हाथ मसककर कृतज्ञ-कण्ठ से कहा, 'जाऊंगी।'

अपूर्व ने चुपके से कहा, 'तो चलो, हम दोनों चुपचाप भाग चलें। मैंने घाट पर एक नाव ठीक कर रखी है।'

मृण्मयी ने अत्यन्त कृतज्ञ दृष्टि से एक बार पति के मुंह की ओर देखा और उसके बाद झटपट उठकर कपड़े बदलकर चलने के लिए तैयार हो गई।

मां को किसी तरह की चिन्ता न हो इसलिए अपूर्व ने एक पत्र लिखकर रख दिया और दोनों निकल पड़े।

मृण्मयी ने उस अंधेरी रात में गांव के उस जनशून्य सुनसान निर्जन रास्ते में पहली ही बार, अपने मन से, सारे अन्तःकरण से, पूरे विश्वास और निर्भरता के साथ अपने पति का हाथ

पकड़ा और उसके अपने हृदय का आनन्द-उद्वेग उस सुकोमल स्पर्श से उसके पति की नसों में भी संचारित होने लगा।

नाव उसी रात को चल दी। हर्षोच्छ्वास के होते हुए भी मृण्मयी को बहुत जल्दी नींद आ गई।

~

दूसरे दिन कैसी मुक्ति थी, कैसा आनन्द था! दोनों ओर कितने बाज़ार, कितने खेत और जंगल दिखाई दे रहे थे, इधर-उधर कितनी नावें आ-जा रहीं थीं! मृण्मयी छोटी-छोटी बात पर पति से तरह-तरह के सवाल करने लगी। 'उस नाव पर क्या है', 'यह लोग कहां से आ रहे हैं', 'इस जगह का नाम क्या है', ऐसे-ऐसे सवाल कि जिनके समाधान आज तक उसे कभी किसी कॉलेज की किताब में नहीं मिले और जो उसके कलकत्ते के अनुभव के बाहर थे।

अपूर्व की मित्रमंडली यह सुनकर ज़रूर लज्जित होगी कि अपूर्व ने इन सब प्रश्नों का अलग-अलग उत्तर दिया था और उसके अधिकांश उत्तर ऐसे थे कि जिनका सत्य के साथ कोई मेल ही नहीं था। मसलन, तिल की नाव को तीसी की नाव, पांचबेड़ा को रायनगर और मुन्सिफ की अदालत को ज़मींदार की कचहरी बताने में उसे ज़रा भी संकोच नहीं हुआ; और सबसे बड़ी मजे की बात यह कि इन सब भ्रमपूर्ण उत्तरों से विश्वस्त-हृदय प्रश्नकारिणी के सन्तोष में तिल-भर भी बाधा न आई।

दूसरे दिन शाम को नाव कुशीगंज पहुंची।

टीन के झोंपड़े में एक मैली-कुचैली कांच की भद्दी लालटेन जलाकर छोटे-से डेस्क पर एक चमड़े की जिल्द वाला बड़ा रजिस्टर रखकर, उघड़े-बदन स्टूल पर बैठे हुए ईशानचन्द्र हिसाब लिख रहे थे। इसी समय इस नव-दम्पति ने झोंपड़े के भीतर प्रवेश किया।

मृण्मयी ने पुकारा, 'बापूजी!'

उस झोंपड़े में आज तक ऐसी कण्ठ-ध्वनि इससे पहले और कभी भी नहीं सुनाई दी।

ईशान की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे और उस समय वह कुछ निश्चय न कर सके कि उन्हें क्या करना चाहिए। मानो उनकी लड़की और दामाद साम्राज्य के युवराज और युवराज्ञी हों और यहां इन पटसन की गांठों के बीच में उनके बैठने लायक सिंहासन कहां और किस तरह बनाया जा सकता है, इसी बात का निर्णय करने में उनकी भटकती हुई बुद्धि और भी भटक गई। खाने-पीने का इन्तज़ाम — यह भी एक चिन्ता की बात है। गरीब क्लर्क अपने हाथ से दाल-भात बनाकर किसी तरह पेट भर लेता है किन्तु आज ऐसे आनन्द के दिन वह क्या करे, क्या खिलावे?

मृण्मयी बोली, 'बापूजी, आज हम सब मिल के रसोई बनायेंगे।'

अपूर्व ने इस प्रस्ताव पर अत्यन्त उत्साह प्रकट किया। उस छोटे से झोंपड़े में जगह की कमी थी, आदमी की कमी थी, अन्न की कमी थी; किन्तु छोटे से छेद से जिस तरह फुहारा चौगुने वेग से छूटता है उसी तरह गरीबी के बारीक सूराख से आनन्द की धारा पूरी तेज़ी से बहने लगी।

इसी तरह तीन दिन बीत गये। दोनों वक्त नियमित-रूप से जहाज़ आकर जेटी से लगता और मुसाफिरों का आना-जाना [illegible] शोरगुल सुनाई देता। संध्या के समय नदी-तट बिलकुल निर्जन

हो जाता है और तब एक तरह की अपूर्व अबाध स्वाधीनता का अनुभव होता है। तीनों मिलकर तरह-तरह की तैयारियां करके, गलतियां करके, कुछ-का-कुछ और कहीं-का-कहीं करके रसोई बनाते। उसके बाद मृण्मयी के चूड़ियों-शुदा स्नेह-भरे हाथों से परोसा जाना, ससुर-जमाई का एकसाथ बैठकर खाना-पीना और गृहिणीपन की सैंकड़ों त्रुटियां दिखलाते हुए मृण्मयी की हंसी उड़ाया जाना और उस पर बालिका का आनन्द-कलह और मौखिक अभिमान करना — इन सब बातों से सबका चित्त आनन्द से पुलकित हो उठा।

अन्त में अपूर्व ने कहा कि 'अब ज़्यादा दिन रहना ठीक नहीं।' इस पर मृण्मयी ने करुण-स्वर से और कुछ रोज़ ठहरने के लिए प्रार्थना की।

ईशान ने कहा, 'नहीं, अब नहीं।'

विदा के दिन लड़की को छाती से लगाकर उसके माथे पर हाथ रखकर अश्रु-गद्गद-कण्ठ से ईशानचन्द्र ने कहा, 'बेटी, तू अपनी सुसराल में उजाला करना, लक्ष्मी बनकर रहना, अच्छा — जिससे मेरी मीनू में कोई कुछ दोष न निकाल सके।'

मृण्मयी रोते-रोते अपने पति के साथ विदा हो गई। और ईशान अपनी उसी निरानन्दमय संकीर्ण टीन के झोंपड़ी में, अपने उसी पुराने नियम के अनुसार माल तौलकर दिन-पर-दिन और महीने-पर-महीने बिताने लगे।

6

दोनों अपराधियों की जुगल-जोड़ी जब घर लौटी तो मां बहुत गम्भीर बनी रहीं और किसी से कुछ बात नहीं की। मां की तरफ से किसी के व्यवहार पर ऐसा कोई दोषारोप ही नहीं किया गया कि जिसकी सफाई के लिए दोनों में से कोई कुछ कोशिश करता। इस नीरव अभियोग ने, इस निस्तब्ध अभिमान ने पहाड़ की तरह सारी घर-गृहस्थी को अटल होकर दबाये रखा।

अन्त में जब असह्य हो उठा तो अपूर्व ने कहा, 'मां, कॉलेज खुल गया है। अब मुझे कानून पढ़ने जाना होगा।'

मां ने उदासीन-भाव से कहा, 'बहू का क्या करोगे?'

अपूर्व ने कहा, 'यहीं रहने दो।'

मां ने कहा, 'ना, बेटा, ज़रूरत नहीं। उसे तुम अपने साथ ही लेते जाओ।'

साधारणत: मां अपूर्व से 'तू' कहकर ही बोलती थीं।

अपूर्व ने अभिमान-व्यथित स्वर में कहा, 'अच्छा।'

कलकत्ता जाने की तैयारियां होने लगीं। जाने के एक दिन पहले रात को अपूर्व जब अपने कमरे में सोने गया तो देखा कि मृण्मयी बिस्तर पर पड़ी रो रही है।

सहसा उसके हृदय को बड़ी चोट पहुंची। व्यथित-स्वर में बोला, 'मृण्मयी, मेरे साथ कलकत्ता जाने को तुम्हारा जी नहीं चाहता?'

मृण्मयी ने कहा, 'नहीं।'

अपूर्व ने पूछा, 'तुम मुझसे प्रेम नहीं करती?'

इस प्रश्न का कुछ जवाब न मिला। आमतौर पर इस तरह के सवाल का जवाब बहुत ही [illegible] हुआ करता है किन्तु कभी-कभी इसमें [illegible] है कि

बालिका से ठीक वैसे जवाब की उम्मीद नहीं की जा सकती। अपूर्व ने कहा, 'राखाल को छोड़कर यहां से जाने में तुम्हारा जी नहीं चाहता, क्यों?'

मृण्मयी ने बड़ी आसानी से जवाब दिया, 'हां।'

बालक राखाल के प्रति इस बी.ए. पास युवक के हृदय में सुई के बराबर बहुत ही बारी किन्तु अत्यन्त लम्बी ईर्ष्या का उदय हुआ। बोला, 'मैं बहुत दिनों तक घर नहीं लौट सकूंगा।' इस संवाद के विषय में मृण्मयी को अपनी तरफ से कुछ नहीं कहना था। अपूर्व फिर बोला, 'शायद दो-ढाई साल या उससे भी ज्यादा दिन लग सकते हैं।'

मृण्मयी ने आदेश दिया, 'वापस आते वक्त तुम राखाल के लिए एक तीन फलवाला राजस का चाकू लेते आना।'

अपूर्व लेटा हुआ था, ज़रा उठकर बोला, 'तो तुम यहीं रहोगी?'

मृण्मयी ने कहा, 'नहीं। मैं अपनी मां के पास जाकर रहूंगी।'

अपूर्व ने एक हलकी-सी उसास लेकर कहा, 'अच्छी बात है, वहीं रहना। सुनो, जब तक तुम खुद मुझे आने के लिए चिट्ठी न लिखोगी तब तक मैं नहीं आऊंगा। अब तो खूब खुश हो न?'

मृण्मयी इस सवाल का जवाब देना फिज़ूल समझकर सोने लगी। किन्तु अपूर्व को नींद नहीं आई और वह तकिया ऊंचा करके उसके सहारे बैठा रहा।

बहुत रात बीते सहसा आकाश में चांद दिखाई दिया और उसकी चांदनी बिस्तर पर आकर फैल गई। अपूर्व उस उजाले में मृण्मयी के चेहरे की ओर देखने लगा। देखते-देखते उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे कथा की राजकुमारी को कोई चांदी की छड़ी छुआकर अचेत कर गया हो। एक बार सिर्फ सोने की छड़ी छुआते ही इस सोती हुई आत्मा को जगाकर उससे माला बदली जा सकती है। चांदी की छड़ी हंसी है और सोने की छड़ी आंसू।

तड़के ही अपूर्व ने मृण्मयी को जगा दिया। बोला, 'मृण्मयी, मेरे जाने का समय हो गया। चलो, मैं तुम्हें तुम्हारी मां के यहां पहुंचा जाऊं।'

मृण्मयी बिस्तर से उठकर चलने के लिए खड़ी हो गई। अपूर्व ने उसके दोनों हाथ थामकर कहा, 'अब एक प्रार्थना और है तुमसे। मैंने कितने ही मौकों पर तुम्हें मदद पहुंचाई है, क्या आज परदेस जाते समय तुम मुझे उसका कुछ इनाम दोगी?'

मृण्मयी ने आश्चर्य के साथ पूछा, 'क्या?'

अपूर्व ने कहा, 'तुम मुझे अपनी तबीयत से, प्यार से, मुझे एक प्यार दो।'

अपूर्व की इस अजीब प्रार्थना और गम्भीर चेहरे को देखकर मृण्मयी हंसने लग गई और फिर बड़ी मुश्किल से उस हंसी को रोककर चुम्बन देने को आगे बढ़ी। अपूर्व के मुंह के पास मुंह ले जाकर उससे न रहा गया और खिलखिलाकर हंस पड़ी। इस तरह दो बार किया और अन्त में स्थिर होकर आंचल से मुंह ढककर हंसने लगी। अपूर्व से और कुछ न बन पड़ा तो उसने डांटने के बहाने उसके बाएं कान की लोलकी (कान के नीचे का कोमल भाग) पकड़कर हिला दी।

अपूर्व ने अपने मन में एक कड़ी प्रतिज्ञा कर रखी थी और वह यह कि डाका डालकर या लूट-खसोटकर वह कुछ नहीं लेना चाहेगा। इसमें वह अपना अपमान समझता है। वह चाहता है कि देवता के समक्ष सगौरव रहकर स्वेच्छा से भेंट किये हुए उपहार को ग्रहण करे, अपने हाथ से उठाकर कुछ भी न ले।

मृण्मयी फिर नहीं हंसी। अपूर्व उसे प्रभात के सुनहले प्रकाश में निर्जन मार्ग से उसकी मां के घर पहुंचा आया और फिर घर आकर अपनी मां से बोला, 'मां, मैंने खूब सोच-विचार कर देखा कि बहू को अपने साथ कलकत्ता ले जाने से पढ़ाई में बड़ा हर्ज होगा और वहां उसकी कोई साथिन भी नहीं है। तुम तो उसे अपने पास रखना नहीं चाहतीं इसलिए मैं उसे मायके पहुंचा आया हूं।' इस तरह गहरे अभिमान में ही माता-पुत्र का विच्छेद हुआ।

7

मायके आकर मृण्मयी को मालूम हुआ कि अब वहां उसका किसी तरह मन ही नहीं लगता। उस घर में मानो शुरू से आखिर तक सब कुछ बदल गया है, पहले का-सा कुछ भी नहीं रहा। समय काटे नहीं कटता। वह क्या करे, कहां जाये, किससे मिले — उसकी कुछ समझ में नहीं आता।

मृण्मयी को सहसा ऐसा लगा कि मानो घर-भर में और सारे गांव में कोई आदमी ही नहीं है, मानो दोपहर को सूर्यग्रहण हुआ है। यह बात किसी भी तरह उसकी समझ में ही नहीं आई कि आज जो कलकत्ता जाने के लिए उसकी तबीयत क्यों इतनी फड़फड़ा रही है और कल रात को उसकी वह तबीयत कहां चली गई थी? कल वह नहीं जानती थी कि जीवन के जिस हिस्से को छोड़कर कलकत्ता जाने में उसका जी इतना आगा-पीछा कर रहा है आज उसका सारा स्वाद ही बदल जायेगा। पेड़ के पके पत्ते की तरह डण्ठल से गिरे हुए उस अतीत जीवन को आज उसने अपनी इच्छा से अनायास ही दूर फेंक दिया।

पुरानी कहानियों में सुना करते हैं कि पहले निपुण अस्त्रकार ऐसी बारीक तलवार बना सकते थे कि जिससे आदमी को काटकर दो टुकड़े कर देने पर भी उसे मालूम नहीं पड़ता था और जब उसे हिलाया जाता था तो उसके दो टुकड़े हो जाते थे। विधाता की तलवार ऐसी ही सूक्ष्म है कि कब उन्होंने मृण्मयी के बाल्य और यौवन के बीच में वार किया, वह जान ही न सकी और आज न जाने कैसे ज़रा हिल जाने से उसका बाल्य-अंश यौवन से अलग जा गिरा और तब वह आश्चर्य में आकर व्यथित होकर देखती ही रह गई।

मायके में उसकी वह पुरानी कोठरी उसे अपनी नहीं मालूम हुई। जो मृण्मयी वहां रहती थी अब मालूम हुआ कि वहां वह नहीं रही। अब हृदय की सारी स्मृति एक-दूसरे ही घर में, दूसरे ही कमरे में, दूसरी ही शय्या के आसपास गूंजती हुई उड़ने लगी। मृण्मयी अब बाहर नहीं दिखाई देती। अब उसकी हास्यध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ती। राखाल उसे देखकर डर जाता है। खेल-कूद की बात तो अब उसके मन में भी नहीं आती।

मृण्मयी ने अपनी मां से कहा, 'मां, मुझे ससुराल ले चल।'

उधर, कलकत्ता जाते समय पुत्र के उस उदास चेहरे की याद कर-करके मां की छाती फटी जा रही थी। यह बात उनके मन में सुई की तरह चुभने लगी कि गुस्से में आकर बहू को वह समधिन के घर छोड़ आया था।

इतने में एक दिन घूंघट खोलकर बहू बनकर मृण्मयी आ पहुंची — चेहरा उसका मुरझा-सा गया था — और उसने सास के पांव छूये। सास की आंखों में आंसू भर आये और उसी क्षण बहू को उन्होंने छाती से लगा लिया।

क्षण में दोनों का मिलाप हो गया। बहू का चेहरा देखकर सास को बड़ा आश्चर्य हुआ, अब

वह मृण्मयी रही ही नहीं! ऐसा परिवर्तन तो साधारणत: सबके लिए सम्भव नहीं होता। बड़े परिवर्तन के लिए बड़े बल की ज़रूरत होती है। सास ने खूब सोच-विचार के बाद यह तय किया था कि बहू के दोष वह एक-एक करके सब सुधार लेंगी — किन्तु यहां तो पहले ही से किसी अदृश्य सुधारक ने संक्षिप्त उपाय से मानो उसे नया ही जन्म दे दिया।

अब बहू ने सास को पहचान लिया और सास ने बहू को। वृक्ष के साथ शाखा-प्रशाखाओं का जैसा मेल होता है उसी तरह सारी घर-गृहस्थी मानो आपस में मिलकर अखण्ड हो गई।

यह जो एक गंभीर-स्निग्ध रमणी मृण्मयी के सारे शरीर में, अणु-अणु में, व्याप्त हो गई है वह मानो उसे वेदना देने लगी। प्रथम आषाढ़ के श्याम बादलों की तरह उसके हृदय में एक तरह का आंसुओं से परिपूर्ण और दूर तक फैला हुआ अभिमान उमड़ने लगा। उस अभिमान ने उसकी आंखों की छायादार लम्बी पलकों पर एक और गहरी छाया डाल दी। वह मन-ही-मन पति से कहने लगी, 'मैं अपने को न समझ सकी तो न सही, पर तुमने मुझे क्यों नहीं समझा? तुमने मुझे सजा क्यों नहीं दी? तुमने मुझे अपनी इच्छा के अनुसार क्यों नहीं चलाया? मुझ-डाइन ने जब तुम्हारे साथ कलकत्ता चलने की मनाही कर दी तो तुम मुझे ज़बरदस्ती पकड़कर क्यों नहीं ले गये? तुमने मेरी बात क्यों सुनी, मेरी ज़िद क्यों पूरी की, मेरे हठ को क्यों सहा?'

उसके बाद उसे फिर उस दिन की याद उठ आई जिस दिन पहले-पहले अपूर्व सवेरे तालाब के किनारे सुनसान रास्ते में उसे कैद करके, मुंह से कुछ न कहकर सिर्फ उसके चेहरे की तरफ देर तक देखता रहा था। उस दिन के उस तालाब की, उस रास्ते की, पेड़ के नीचे उस छाया की, सवेरे की उस सुनहली धूप की, हृदय-भार से झुकी हुई उस गहरी चितवन की उसे याद उठ आई और सहसा उसका पूरा-पूरा अर्थ उसकी समझ में आ गया। उसके बाद विदा के दिन जिस चुम्बन को वह अपूर्व के ओंठों तक ले जाकर लौटा लाई थी वह अधूरा चुम्बन अब मरु-मरीचिका की ओर प्यासे हरिण की तरह उत्तरोत्तर तेज़ी के साथ उस बीते हुए अवसर की ओर उड़ान भरने लगा परन्तु प्यास उसकी किसी भी तरह नहीं मिटी। अब रह-रहकर उसके मन में यही बातें आती हैं अरे, उस समय अगर ऐसा करती — उनकी बात का अगर ऐसा जवाब देती — तब अगर ऐसा करती — इत्यादि।

अपूर्व के मन में इस बात का बड़ा खेद रहा कि मृण्मयी ने उसे अच्छी तरह पहचाना नहीं और मृण्मयी भी आज बैठी-बैठी सोच रही है कि उन्होंने उसे क्या समझा होगा, क्या सोचते होंगे वह! अपूर्व ने उसे 'उद्दण्ड मूर्ख अविवहकी लड़की' समझ लिया, लबालब भरे हुए हृदयामृत की धारा से अपनी प्रेम-पिपासा मिटाने में उसे समर्थ तरुणी नहीं समझा, इस पश्चात्ताप से मारे शर्म के वह धरती में गड़-गड़ जाने लगी और प्रियतम के चुम्बन और लाड़-सुहाग के उन ऋणों को वह पति के तकिये को दे-देकर उऋण होने की कोशिश करने लगी। इस तरह बहुत दिन बीत गये।

अपूर्व जाते वक्त कह गया था, 'जब तक तुम खुद चिट्ठी नहीं लिखोगी तब तक मैं नहीं आऊंगा।' मृण्मयी उसी बात की याद करके एक दिन घर का दरवाज़ा बन्द करके चिट्ठी लिखने बैठी। अपूर्व ने उसे जो सुनहरी-किनारी के रंगीन कागज़ दिये थे उन्हें निकालकर वह बैठी-बैठी सोचने लगी, क्या लिखे? बड़ी सावधानी से अच्छी तरह हाथ जमाकर टेढ़ी-मेढ़ी लकीर बनाकर उंगलियों में स्याही पोतकर छोटे-बड़े अक्षरों में, ऊपर कुछ सम्बोधन दिये बिना एकदम लिख दिया, 'तुम मुझे चिट्ठी क्यों नहीं देते? तुम कैसे हो! तुम जल्दी घर आओ।' और [illegible]

मनुष्य-समाज में मन का भाव और भी ज़रा कुछ बढ़ाकर प्रकट किया जाना चाहिए। मृण्मयी को भी यह कमी खटकी। इसलिए उसने बहुत देर तक सोच-सोचकर और कुछ नये शब्द जोड़ दिये, 'अब तुम मुझे चिट्ठी देना, कैसे रहते हो सो लिखना, घर आना, मां अच्छी तरह हैं, बिसू पुत्ती सब अच्छी तरह हैं और कल हमारी काली गाय के बछड़ा हुआ है।'

इतना लिखकर चिट्ठी खत्म कर दी। चिट्ठी को लिफाफे में बन्द करके प्रत्येक अक्षर पर एक-एक बूंद हृदय का प्रेम उंड़ेलते हुए उस पर लिख दिया, श्रीयुत बाबू अपूर्व कुमार राय। प्रेम चाहे जितना उंड़ेला गया हो किन्तु फिर भी लकीर सीधी, अक्षर सुन्दर और सही नहीं हुए। लिफाफे पर नाम के सिवा और भी कुछ लिखना ज़रूरी है, मृण्मयी इस बात से वाकिफ नहीं थी। इस डर से कि कहीं सास या और कोई देख न ले, उस चिट्ठी को उसने एक विश्वस्त दासी के हाथ डाक में डलवा दिया। कहने की ज़रूरत नहीं कि उस चिट्ठी का कुछ नतीजा नहीं निकला, अपूर्व घर नहीं आया।

8

मां ने देखा कि कॉलेज की छुट्टियां हो गईं फिर भी अपूर्व घर नहीं आया। सोचा, अब भी वह उनसे गुस्सा है। मृण्मयी ने भी समझ लिया कि पति उससे नाराज़ हैं और तब वह अपनी चिट्ठी की याद करके मारे शर्म के गड़-गड़ जाने लगी। वह चिट्ठी उसकी तुच्छ थी, उसमें तो कोई बात ही नहीं लिखी गई, उसके मन का भाव तो उसमें कुछ ज़ाहिर ही नहीं हुआ। उसे पढ़कर वह उसकी मन-ही-मन और भी अवज्ञा करते होंगे, यह सोच-सोचकर वह तीर-बिंधे शिकार की तरह भीतर-ही-भीतर तड़पने लगी।

दासी को उसने बार-बार पूछा, 'उस चिट्ठी को तू डाक में डाल आई थी?'

दासी ने उसे बार-बार विश्वास दिलाकर कहा, 'हां बहूजी — मैं अपने हाथ से चिट्ठी के बकस में डाल आई थी। बाबूजी को वह मिल गई होगी।'

अन्त में अपूर्व की मां ने एक दिन मृण्मयी को बुलाकर कहा, 'बहू, अपू बहुत दिनों से घर नहीं आया, मन चाहता है कलकत्ता जाकर उसे देख आऊं। तुम साथ चलोगी?'

मृण्मयी ने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया और फिर अपने कमरे में जाकर दरवाज़ा बन्द करके, बिस्तर पर पड़कर, तकिये को छाती से लगाकर, हंसकर, इधर से उधर करवट लेकर, हृदय के आवेग को मनमानी छुट्टी देकर हलकी होने लगी। उसके बाद क्रमशः गम्भीर बनकर, उदास होकर, आशंका में डूबकर बैठी-बैठी रोने लगी।

अपूर्व को कोई खबर दिये बिना ही दोनों अनुतप्ता स्त्रियां उसकी प्रसन्नता की भीख मांगने के लिए कलकत्ता चल दीं।

अपूर्व की मां कलकत्ते में अपने दामाद के यहां ठहरीं।

मृण्मयी के पत्र की आशा छोड़कर उस दिन शाम को प्रतिज्ञा भंग करके अपूर्व खुद ही उसे चिट्ठी लिखने बैठा था। कोई भी शब्द मन को पसन्द नहीं आ रहा था। वह ऐसा कोई सम्बोधन ढूंढ़ रहा था कि जिसमें पूर्ण प्रेम भी प्रकट हो और अभिमान भी। शब्द ढूंढ़े न मिला तो मातृभाषा पर उसकी अश्रद्धा बढ़ने लगी। इतने में उसे बहनोई का पत्र मिला कि 'तुम्हारी मां आई हैं — जल्दी आकर मिलो और शाम को यहीं ब्यालू (संध्या समय किया जाने वालो भोजन) करना। घर के समाचार सब अच्छे हैं।' समाचार अच्छे होने पर भी उसका मन

अमंगल की आशंका से विह्वल हो उठा। और झटपट उठकर वह बहनोई के घर चल दिया।

भेंट होते ही मां से उसने पूछा, 'मां, घर में सब राज़ी-खुशी है?'

मां ने कहा, 'हां, सब खुशी-राज़ी है, बेटा। छुट्टियों में तू घर नहीं गया, इसी से मैं तुझे लेने आई हूं।'

अपूर्व ने कहा, 'इसके लिए तुम्हें इतनी तकलीफ उठाकर यहां आने की क्या ज़रूरत थी! मुझे कानून की परीक्षा देनी थी इत्यादि।'

खाते वक्त बहन ने पूछा, 'भइया, आते वक्त भाभी को तुम साथ क्यों नहीं लेते आये? छोड़ क्यों आये थे?'

भइया ने गम्भीरता के साथ कहा, 'कानून की पढ़ाई थी।'

बहनोई ने हंसकर कहा, 'यह सब फालतू बात है — असल में हमारे डर से लाने की हिम्मत नहीं पड़ी!'

बहन बोली, 'हो भी तो डरावने आदमी! छोटे बच्चे कहीं अचानक देख लेते हैं तो मारे डर के उन्हें बुखार आ जाता है।'

इस तरह हंसी-मज़ाक चलने लगा परन्तु अपूर्व बिलकुल उदास ही बना रहा। कोई भी बात उसे अच्छी नहीं लग रही थी। वह सोच रहा था कि 'मां जब कलकत्ते आईं तो मृण्मयी चाहती तो मां के साथ आसानी से आ सकती थी। शायद मां ने उसे साथ लाने की कोशिश भी की होगी किन्तु वह अल्हड़ लड़की राज़ी नहीं हुई होगी।' और इस विषय में संकोच के कारण मां से भी वह कुछ पूछ न सका। सारा मानव-जीवन और विश्व की रचना उसे शुरू से आखिर तक व्यर्थ मालूम होने लगी।

भोजन करने के बाद बड़े ज़ोर की आंधी आई, घनघोर वर्षा होने लगी।

बहन ने कहा, 'भइया, आज यहीं रह जाओ।'

भइया ने कहा, 'नहीं, मुझे काम है, जाना होगा।'

बहनोई ने कहा, 'रात को तुम्हें ऐसा क्या काम है? एक रात के लिए यहां रह ही गये तो क्या। तुम्हें तो किसी को जाकर कैफियत नहीं देनी। फिर फिक्र किस बात की?'

बहुत कहने-सुनने के बाद, बिलकुल तबीयत न होने पर भी अपूर्व रात को वहीं सोने के लिए राज़ी हो गया। बहन ने कहा, 'भइया, तुम थके हुए मालूम होते हो, अब जागो मत। चलो, सोओ जाकर।'

अपूर्व की भी यही इच्छा थी कि बिस्तर पर अंधेरे में अकेला जाकर सो रहे तो उसकी जान बचे। बात का जवाब देना भी उसे अखरता था।

सोने के लिए उसे जिस कमरे के द्वार तक पहुंचाया गया, वहां जाकर उसने देखा कि भीतर अंधेरा है।

बहन ने कहा, 'हवा में बत्ती बुझ गई मालूम होती है, दूसरी बत्ती लिये आती हूं।' अपूर्व ने कहा, 'नहीं, ज़रूरत नहीं। बत्ती जलाकर सोने की मेरी आदत नहीं।'

बहन के चले जाने पर अपूर्व अंधेरे कमरे में सावधानी के साथ पलंग की ओर बढ़ा।

पलंग पर बैठना ही चाहता था कि इतने में सहसा चूड़ियों के खनकने की आवाज़ हुई और

एक सुकोमल बाहु-पाश ने उसे बन्धन में बांध लिया। और फिर फूल-से कोमल व्याकुल ओठों ने डाकू की तरह आकर अविरल अश्रुधारा से भीगे हुए आवेगपूर्ण चुम्बनों के मारे उसे आश्चर्य प्रकट करने तक का मौका नहीं दिया। अपूर्व पहले तो चौंक पड़ा, उसके बाद उसकी समझ में आया कि बहुत दिनों पहले जो काम सिर्फ हंस देने के कारण ही अधूरा रह गया था उसे आंसुओं की धारा ने आज समाप्त कर दिया।

बंग्ला-रचना : आश्विन-कार्तिक 1300 (अक्तू. 1893)